अध्याय इक्यावनवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"जो लोग वैराग्य भावना से (निष्काम होकर) आप के चरणों को वंदन करते हैं, आप उन्हें सत्संग का लाभ दिलाते हैं, सत्संग प्राप्त होने के कारण वे किसी भी प्रकार की चिंता नहीं करते तथा भक्ति भाव से आप का नामस्मरण करते हुए आनंद का उपभोग लेते हैं; परंतु जो शुद्ध प्रेम से आप को अपने हृदय में ही पूजते हैं, वे आप के चरणों (मोक्ष धाम) में विलीन हो जाते हैं"

हे श्रीसिद्धारूढ़ स्वामीजी आप मंगलकारक हैं। आठों दिशाओं में आप की महिमा फैलने के कारण, उसका बयान करने जाऊँ तो मेरे मुख से शब्द भी नहीं निकलता। आप का स्वरूप जानने का प्रयास करने लगते ही, सभी रूपों (सर्वगत) में आप ही हैं इस का हमें ज्ञान न होने के कारण, हम व्यर्थ ही भ्रांति में पड़ जाते हैं। जहाँ गुण, दोष रोपे जाते हैं तथा जहाँ क्रोध और व्देष जैसी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, ऐसा हमारा चित्त मलीन होने के कारण पूर्ण रूप से बदल गया है। अविरत बदलाव होना यह इस जगत (संसार) का मूलप्रवृत्तिक धर्म है, ऐसे जगत में जन्मे हुए हम विविध रूप तथा नाम (दृश्य का फैलाव) देखते हैं, जिससे एक पल भर भी फुरसत लिए बगैर असत्य अथवा झूठी (अविद्या) वस्तुओं का भ्रम हमारे चित्त में स्थिर हो जाता है, उसके पश्चात अनेक सत्कर्मों का संचय होकर, जन्म-मृत्यु के असंख्य फेरे लेने के कारण ऊब गया हुआ जीवात्मा, इस क्रूर चक्र से छुटकारा पाने के प्रति सोचने लगता है। इस प्रकार विचार करने लगते ही उसे सत्संग करने की भावना उत्पन्न होती है तथा सत्संग की महिमा के कारण ये सारा जग ही एक भ्रम (मिथ्या) है, ऐसा वह जान जाता है। जिससे वैराग्य दृढ़ होता है तथा विषयोपभोगों से सुख प्राप्त होता है, इस भ्रामक कल्पना का त्याग करके वह अनन्य भक्ति भाव से सतगुरुजी की शरण में जाता है। वैराग्य भाव से तथा देह बुद्धि त्यागकर अनन्य भाव से सतगुरुजी की सेवा करते हुए वेदांत पर चर्चा सुनते सुनते उसके मन को शांति प्राप्त होती है। अब तक मन में स्थित सामान्य वैराग्य के कारण निश्चित ही आगे चलकर श्रेष्ठ दर्जे का वैराग्य प्राप्त होता है, जिससे गुरु कृपा होकर कुछ समय के उपरांत सारी वासनाएँ पूर्ण रूप से नष्ट होती हैं। जिस

प्रकार जल से भरा बर्तन आग पर रखते ही, बर्तन में होने वाला जल उबलकर धीरे धीरे कम होने लगता है। उसके उपरांत अग्नि बुझा देने और जल का उबाल थम जाने से भी जल का तापमान तुरंत कम नहीं होता। कुछ समय तक बर्तन में स्थित जल गरम ही रहता है। उस जल का तापमान ठंड़ा करने के लिए, उसमें दूसरा ठंड़ा जल मिलाना पड़ता है, तभी ठंडे जल की सहायता से गरम जल भी ठंड़ा हो जाता है। उसी प्रकार जीवात्मा रूपी जल शरीर रूपी बर्तन में होकर, अगर उस शरीर रूपी बर्तन को विषयोपभोगों की अग्नि पर रख दिया जाए, तो जब तक वह ऐसी स्थिति में रहता है, तब तक जीवात्मा को केवल दुख की ही अनुभूति होती है। उसके पश्चात जब जीवात्मा उसके मन का इस प्रकार की सुख लोलुपता के प्रति होने वाला झुकाव छोड़ देता है (या बदलता है) तभी दुख उसका पीछा छोड़ता है तथा विषयोपभोगों से निर्मित ताप नष्ट होता है। वह ठंड़ा जल यानी मन को शांति प्रदान करने वाला सत्संग है, इस प्रकार का सत्संग करने से वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं। मन में बिलकुल वासना न होना इसी को परम वैराग्य अथवा श्रेष्ठ दर्जे का वैराग्य, कहा जाता है। सत्संग किए बगैर वह प्राप्त नहीं होता, यह जान लीजिए। सतगुरुजी के उपदेश से जब स्वरूप ज्ञान होता है, तब बुद्धि में सत्व, रज तथा तम, ये गुण एकरूप होते हैं; जिससे बुद्धि क्रोध तथा व्देष जैसी समस्त भावनाओं को मन से बाहर निकालकर फेंक देती है। इस प्रकार का, अपरा (कनिष्ठ दर्जे का) और परा (श्रेष्ठ दर्जे का) वैराग्य क्या किसी ने प्राप्त किया है, ऐसा प्रश्न श्रोतागणों के मन में आया होगा, इसीलिए मैं अब इस वैराग्य का अर्थ विषद करने वाली सतगुरुजी की एक कहानी बयान करता हूँ, उसे सुनिए।

श्रीसिद्धारूढ़ सतगुरुजी के खासगत तथा निर्वाणप्पा नाम के दो शिष्य थे। खासगत का वैराग्य थोड़ा हलके दर्जे का था, उसने देह बुद्धि का त्याग करके सिद्धनाथजी की भक्ति किस प्रकार साध ली, वह कहानी मैं आप को बयान करता हूँ। जो तालीकोट नाम के गाँव में रहता था, उस खासगत को वैराग्य प्राप्त होने से, वह घरबार छोड़कर सिद्धजी के पास आकर रहने लगा। उसका वैराग्य तीव्र होने के कारण उसने देह बुद्धि नष्ट करके विषयोपभोगों से मन को निवृत्त किया और वह पूर्ण रूप से सतगुरुजी का कृपा पात्र बना। सिद्धारूढ़जी के

पास आकर उसने दीन होकर कहा, "महाराज, मुझे आप के चरणों में स्थान दीजिए, वर्ना मेरी क्या हालत होगी? मेरा मन घर गृहस्थी से ऊब गया है। आप मुझे आप के चरणों में स्थान दीजिए, तभीं मेरा जन्म सार्थ हो जाएगा और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुझे छुटकारा मिलेगा।" उसका कठोर वैराग्य देखकर सतगुरुजी मन ही मन आनंदित हुए और तब से उन्होंने उसे अपने साथ रहने की अनुमति दी। एक दिन खासगत गाँव में भिक्षा माँगने गया था, तब एक महिला ने उसे अपने घर बुलाया। उस महिला ने कहा, "आज हमारे घर पकवानों से पूर्ण भोजन की व्यवस्था है। इसलिए, यहीं बैठकर आप भरपेट भोजन करके हम पर कृपा कीजिए।" उसपर उसने कहा, "किसी के भी घर जाकर भोजन करने की मुझे आज्ञा नहीं है। इसलिए, केवल भिक्षा देकर मुझे भेज दीजिए।" उसके पश्चात उस महिला ने उसे वहीं भोजन करने का बहुत आग्रह किया, परंतु उसने उसकी बात नहीं मानी और वह खाली हाथ वापस लौटने लगा। तब उस महिला ने भरपूर भिक्षा देकर उसे भेज दिया। वह भिक्षा की झोली लाकर उसने सतगुरुजी के सामने रख दी। परंतु जब सतगुरुजी ने उस झोली में रखा भोजन निकालकर उसे दिया तब उसने उसमें से एक दाना भी मुख में नहीं डाला। सतगुरुजी तथा अन्य शिष्यों ने मिलकर भोजन किया, उसके पश्चात खासगत ने जूठी थालियाँ उठाकर इकट्ठा की और वह पास होने वाले खेत गया। उन थालियों में स्थित सारा जूठा तथा छोड़ा हुआ खाना इकट्ठा करके वह खाने लगा, इतने में एक कुत्ता उसके पास आकर बड़ी आशा से उसकी ओर देखने लगा। कुत्ते को देखते ही उसे पास बुलाकर उसने अपना खाना उसके सामने रख दिया, ये देखकर सभी शिष्य मन ही मन दंग रह गए। इस प्रकार प्रतिदिन खासगत कौए तथा कुत्तों के साथ मिलकर एक ही थाली में भोजन करता था, परंतु उसने अन्य शिष्यों के साथ बैठकर कभी भी खाना नहीं खाया। अगर उसे थालियों में जूठन नहीं मिली तो, वह एकाध बासी भाकरी का टुकड़ा खोजकर, वह टुकड़ा भी सभी प्राणियों में बाँटकर खाता था। इस प्रकार प्रतिदिन खासगत का निर्वाह चलता था। सतगुरुजी के एक श्रेष्ठ शिष्य चनमल्लप्पा ने उसे पूछा, "अरे भाई! स्वादिष्ट पकवानों को छोड़कर तुम बासी खाना खाने की क्यों आशा करते हो?" उसने कहा, "अगर मैं पकवानों का भोजन करने लगा, तो भोजन

स्वादिष्ट होने के कारण मैं अधिक मात्रा में भोजन करूँगा। ज्यादा भोजन करने से मैं अधिक अलसाऊँगा, जिससे गुरु सेवा तथा चिंतन बिलकुल नहीं हो पाएँगे और उससे मुझे बहुत दुख होगा। दूसरी बात यह है की, पकवानों का एक दोष है की अगर हम उन्हें स्वाद से खाने लग जाए, तो बार बार खाने की आशा होती है, उससे भी दुख होता है। इस प्रकार, पकवान खाने से दो प्रकार के दुख मिलते हैं; वे दुख सह न पाने के कारण, मैंने पकवानों का त्याग किया है।" चनमल्लप्पा सोचने लगा की सचमुच ही खासगत का वैराग्य धन्य है, इस में कोई संदेह नहीं की यह निश्चित ही सतगुरुजी की कृपा प्राप्त करेगा।

अगर कोई महिला मठ आ जाती तो खासगत मठ छोड़कर बाहर भाग जाता था और जब तक वह महिला मठ छोड़कर नहीं जाती तब तक मठ नहीं लौटता था। यह देखकर सिद्धनाथजी ने खासगत से कहा, "महिलाओं को देखकर तुम क्यों भयभीत होते हो? पुरुष, महिला इस प्रकार का भेद मन में मत रखो। अरे भाई, महिला तथा पुरुष इस प्रकार का भेद न रखते हुए चारो ओर ब्रह्म (चैतन्य) देखना चाहिए; हालाँकि, महिला और पुरुषों के चित्र भिन्न भिन्न प्रकार से बनाए गए हो, तो भी उनमें एक जैसे रंग ही मिलाए रहते हैं।" खासगत ने गुरुदेव से कहा, "गुरुनाथजी, मेरी ब्रह्म बुद्धि स्थिर नहीं रहती, आप की कृपा से जब मेरी ब्रह्म बुद्धि स्थिर हो जाएगी, तब से मैं महिलाओं को देखकर कभी भी भयभीत नहीं होऊँगा। फिलहाल, महिलाओं को देखते ही मन में सभी प्रकार के अच्छे बुरे विचार निर्माण होते हैं। चारो ओर महिला तथा पुरुष ऐसा भेद न होकर केवल ब्रह्म ही है, इसकी मुझे अभी भी प्रतिती नहीं हुई, इसीलिए मैं महिलाओं को देखकर भयभीत होता हूँ।" खासगत के शब्द सुनकर सतगुरुजी पूर्णत: आनंदित हुए और मन ही मन बोले की जल्द ही यह ज्ञान प्राप्ति कर लेगा इस में कोई संदेह ही नहीं है।

एकबार खासगत बीमार होकर उसे तीव्र ज्वर आया, चनमल्लप्पा ने उसपर बहुत सारे उपचार किये; ज्वर से ऊबकर खासगत वन की ओर निकल गया। मठ में से किसी भी व्यक्ति को सूचित किए बगैर, जहाँ लोगों की थोड़ी सी भी भीड़भाड़ नहीं है, ऐसे एकांत स्थल जाकर एक पेड़ की छाया में वह लेट गया। एक फटा हुआ कपड़ा शरीर पर ओढ़कर, जमीन पर स्थित कंकर तथा

काँटों की पर्वा किए बगैर वह लेटा रहा। ज्वर अधिक तेज होने के बावजूद भी, खासगत ज्वर की पर्वा किए बिना मन ही मन सतगुरुजी का ध्यान तथा उनका नामस्मरण करते हुए लेटा रहा। अगर कोई मित्र अचानक इधर आया तो उसे टालकर अन्य किस स्थान पर जाना चाहिए, केवल इसी की चिंता उसे हो रही थी। मेरे लिए अगर दूसरों को कष्ट होते हो, तब मेरा जीवन व्यर्थ ही हुआ ऐसा समझना चाहिए, क्योंकि मेरे कारण दूसरों को कष्ट हो, यह मैं सह नहीं सकता और उससे मुझे अत्यंत दुख होता है। उसी समय एक कौआ उसके समीप आने लगा, उसपर उसने कहा, "जल्द ही मैं मेरा यह शरीर तुम्हें खाने के लिए दे दूँगा! जब हम लोगों के घर भिक्षा माँगने जाते हैं, तब कोई ना कोई हमें भिक्षा दे ही देता है, परंतु तुम्हें सभी भगा देते हैं, तुम्हारा जन्म कितना दु:सह है! यहाँ जो सुख है, वह घर में नहीं है, क्योंकि इस स्थान पर सभी प्राणी तथा पक्षी हमारे मित्र है तथा मुझे यहाँ किसी से भी व्देष नहीं है, इसीलिए, मैं यहीं रहूँगा। लोगों के बीच रहने से, हमारा व्देष करने वाले मनुष्य तथा वासनाएँ उत्तेजित करने वाली महिलाएँ और अन्य वस्तुओं के कारण दिनरात दुख प्राप्त होता रहता है। केवल सतगुरु स्थान से लगाव होने के कारण, मैं गुरु स्थान छोड़ना नहीं चाहता, मुझे गुरु चरणों से लटक लगी है यह मेरा सौभाग्य ही है। जब तक मेरा ज्वर नहीं उतरता, तब तक मैं यहीं रहूँगा, उसके पश्चात मैं फिर से सिद्धाश्रम जाकर सतगुरुजी के चरणों के पास रहूँगा।" इस प्रकार खासगत सोच ही रहा था तब सिद्धाश्रम में वह कहीं भी दिखाई न देने के कारण सतगुरुजी को उसकी चिंता होने लगी। सतगुरुजी ने कहा, "खासगत मेरा नन्हा शिशु ही है! न जाने शरीर की चिंता पूर्ण रूप से त्यागकर, कहाँ गया है मेरा बालक! थोड़ा सा भी देहभान न होने वाला वह, मुझ पर पूरा विश्वास करके, हमेशा चारो ओर चैन से घूमता रहता है। इसीलिए मुझे अब उसकी चिंता होने लगी है।" भक्तों के रक्षण कर्ता होने वाले गुरु महाराज ऐसा कहते समय उनकी आँखों से अविरत अश्रुधाराएँ बहने लगी। उन्होंने दूसरों से कहा, "आप सभी यहीं रहिए, मैं चनमल्लप्पा के साथ उसे खोजने जाता हूँ।" इस प्रकार जीवात्मा के प्रति एकरूपता दिखाकर सतगुरुजी चनमल्लप्पा के साथ खासगत को खोजने निकल पड़े। उनके मन में खासगत की बहुत ही चिंता लगी रहने के कारण,

सतगुरुजी सभी से उसका पता पूछते पूछते तथा चारो ओर उसे खोजते हुए जाने लगे। खोजते खोजते दोनों जंगल में घुस गए, तथा वहाँ हर एक झाड़झंखाड़ में उसे खोजने लगे, परंतु वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया। इधर एक पेड़ के नीचे लेटकर आनंदित होकर मन ही मन सतगुरुजी का चिंतन कर रहे खासगत ने सामने से सतगुरुजी को दौड़ते हुए आते देखा। दूर से ही पेड़ के नीचे लेटे हुए खासगत को देखकर सतगुरुजी को अपार आनंद हुआ, उसपर दौड़ते हुए आकर उन्होंने खासगत को उठाया और कहा, "खासगत, मेरे बालक! अरे, तुम्हें आँखों के सामने न देखकर मेरी जान छटपटा रही थी!" कहते कहते उनकी आँखें भर आयी। उसे स्नेह से गले लगाकर सिद्धजी ने कहा, "भाई, मठ छोड़कर संकटों से भरे इस जंगल में तुम क्यों चले आये?" उसने कहा, "महाराज, यहाँ आकर लेटे रहने का मन किया, इसीलिए, यहाँ चला आया, बस और कुछ नहीं।" इतने में चनमल्लप्पा आगे बढ़कर बोला, "महाराज, मुझे लगता है की मेरे किए हुए उपचारों से ऊबकर ही ये यहाँ आया है। इसलिए महाराज, इस अपराध के लिए मैं आप के चरण पकड़कर आप से क्षमा चाहता हूँ।" चनमल्लप्पा के शब्द सुनकर अपार दुख होने के कारण खासगत ने दौड़ते हुआ आकर दोनों के चरण छू लिए और उठकर कहा, "गुरुनाथजी, मेरे इस नीच शरीर के कारण ही आप को यहाँ तक आना पड़ा, इसलिए, मुझे बहुत खेद हो रहा है।" सिद्धजी ने कहा, "जब से तुम मठ छोड़कर जंगल में एकांत के लिए आए, तब से सभी को बहुत दुख हुआ है, इसलिए इसके पश्चात ऐसा कभी भी मत करना, क्योंकि, मेरा मन तुम्हारे लिए तड़पता रहता है।" उसके उपरांत सतगुरुजी ने उनके परम पवित्र हाथ से स्पर्श करते ही उसका ज्वर पूर्ण रूप से उतर गया और वे तीनों मठ की ओर निकले। उसे वापस लौटा हुआ देखकर सभी अत्यंत हर्षित हुए। अन्य शिष्यों ने कहा, "धन्य धन्य है यह खासगत! इस ने सतगुरुनाथजी से स्नेह का नाता जोड़ा। इसके समान अनुपम वैराग्य हम ने कहीं भी नहीं देखा। वह सतगुरुजी को छोड़कर जाते ही, दयालु सतगुरुजी उसे त्यागे बिना, उसने बिनती न करने के बावजूद, जैसे एक माता अपने बालक को खोजने जाती है, उसी प्रकार उसे खोजने गए।" कुछ शिष्यों ने कहा, "इसका वैराग्य देखकर, भक्तों के मन में बसने वाले सतगुरुजी उसे पूर्ण रूप से प्रसन्न हुए।" दयाघन

सतगुरुनाथ, भक्तों ने बिनती न करने के बावजूद भी उनकी रक्षा करते हैं, तथा भक्तगण सतगुरुजी को तन-मन-धन अर्पण करके उनका अविरत चिंतन करते हैं। श्रोतागण, अगले अध्याय में, विशेष गुरुकृपा से आत्मज्ञान प्राप्त किए हुए निर्वाणप्पा की कथा सुनिए। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह इक्यावनवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥